मार्क्सवाद

परिचय माला ३

राजसत्ता

शिव वर्मा

गार्गी प्रकाशन

राजसत्ता

लेखक

शिव वर्मा

प्रकाशक

गार्गी प्रकाशन
1/4649/45बी, गली न0 -4,
न्यू मॉडर्न शाहदरा, दिल्ली-110032
e-mail: gargiprakashan15@gmail.com

राजसत्ता

लेखक : शिव वर्मा

प्रथम संस्करण : 1958
प्रस्तुत संस्करण : 2014
प्रथम पुनर्मुद्रण : 2017

मूल्य : 10 रुपये

मुद्रक : प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स ए-21 झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया,
जी.टी. रोड शाहदरा, दिल्ली-95

भूमिका

राजसत्ता पर कुछ लिखने से पहले यह साफ कर देना जरूरी है कि इस सवाल को पूँजीवादी लेखकों और बुद्धिजीवियों ने काफी पेचीदा और घपले का सवाल बना रखा है। इस घपले और पेचीदगी को दूर करने और सवाल को अच्छी तरह समझने के लिए हमें उस पर अलग-अलग पहलुओं से बार-बार विचार करना पड़ेगा। इस सवाल पर बार-बार विचार करना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि राजसत्ता का सवाल राजनीति में मुख्य और बुनियादी सवाल है। हर आर्थिक-राजनीतिक सवाल किसी न किसी शक्ल में राजसत्ता के सवाल में बँधा होता है और इसीलिए हमें हर समय किसी न किसी शक्ल में राजसत्ता से सरोकार पड़ता रहता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि राजसत्ता का सवाल क्रान्ति का सवाल है और उसके सुलझने या न सुलझने पर समाज के सारे भविष्य का दारोमदार है। इसलिए राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए जरूरी है कि वे राजसत्ता के सवाल को सही तौर से अच्छी तरह समझ लें जिससे आवश्यकता पड़ने पर बातचीत या बहस-मुवाहसे में वे अपने विरोधियों को सही जवाब दे सकें और अपने काम के दौरान अमल में अगर राजसत्ता से सम्बन्ध रखनेवाला कोई सवाल हो तो फौरन उसी जगह स्वतंत्र रूप से उस पर सही फैसला ले सकें।

मार्क्सवाद परिचय माला की यह पुस्तक इसी उद्देश्य को सामने रखकर लिखी गयी है।

इस पुस्तक में पूँजीवादी जनवाद के वर्ग-स्वरूप को नहीं उधेड़ा गया है। आरम्भ में राजसत्ता और जनवाद पर एक ही पुस्तक में लिखने का विचार था। दरअसल राजसत्ता और जनवाद एक ही विषय के दो पहलू हैं और उन्हें एक दूसरे से अलग किया भी नहीं जा सकता है। लेकिन भाड़े के लेखकों और पूँजीवादी

बुद्धिजीवियों ने इस सवाल को इतना उलझा रखा है कि इस पर विस्तार से विचार करना जरूरी है। इसलिए इस पुस्तक को राजसत्ता तक सीमित रखकर जनवाद के सवाल पर अगली पुस्तक में लिखा गया है। ऊपर जो कुछ कहा गया है उसकी रोशनी में परिचय माला की अगली पुस्तक "पूँजीवादी जनवाद" को इस पुस्तक का चौथा भाग कह सकते हैं।

शिव वर्मा

पहला सबक

राजसत्ता

राजसत्ता क्या है?

राजसत्ता वह हथियार है जिसके द्वारा एक वर्ग दूसरे वर्ग को दबाकर रखता है।

यूँ तो आप देश के एक कौने से दूसरे कोने तक चले जाइये आप कहीं राजसत्ता नाम का कोई साइनबोर्ड नहीं पायेंगे। लेकिन जब शहरों में छंटनी, कटौती, महँगाई, बेकारी, मजदूरी में कमी आदि के खिलाफ मजदूर संगठित होकर पूँजीपति के विरुद्ध संघर्ष छेड़ते है, हड़तालें करते हैं, तो अमन, शान्ति और कानून की रक्षा के नाम पर खाकी वर्दी पहने हथियारों से लैस पुलिस आ धमकती है। मजदूरों की यूनियनों के दफ्तरों में ताले जड़ दिये जाते हैं और रातोंरात उनके नेता पकड़कर जेलों में बन्द कर दिए जाते हैं। अगर फिर भी खामोशी के साथ मजदूर पूँजीपति का शोषण, उनके द्वारा की जाने वाली छंटनी, कटौती आदि को बर्दाश्त करने पर राजी नहीं होते और संघर्ष जारी रखते हैं और जलूस निकालते हैं, तो दफा 144 लगाकर उनका आन्दोलन गैर कानूनी करार दिया जाता है और अगर मजदूर फिर भी न मानें तो अमन और कानून की रक्षा के नाम पर पुलिस के डण्डों की बौछार शुरू हो जाती है, उनकी बन्दूकें निहत्थे गरीबों पर सनसनाती गोलियाँ उगलने लगती हैं, वे देखते हैं कि अमन और कानून की रक्षा के नाम पर राजसत्ता व्यक्तिगत पूँजी और शोषण की रक्षा करती है।

गाँवों में किसान की गाढ़ी कमाई का खासा हिस्सा जमीदार छीन ले जाता है। उसे हारी, बेगारी, नजराना, बेदखली आदि का शिकार बनाता है, लेकिन अगर किसान इस जुल्म के खिलाफ आवाज उठाते हैं, जमीदार की फालतू जमीन को अधिक अन्न उपजाने के लिए उसकी मर्जी के खिलाफ जोत लेते हैं जमींदार के गुण्डों के आतंक के खिलाफ आत्मरक्षा में हाथ उठाते हैं तो फौरन उन गाँवों में सरकारी और सशस्त्र पुलिस के कैम्प कायम हो जाते हैं, सामूहिक जुर्माना होता है और इस तरह

गाँवों में आतंक का राज कायम कर दिया जाता है। किसान देखते हैं कि राजसत्ता भागे हुए जमीदारों को फिर गाँव में लाकर बिठाती है, उनकी रक्षा करती है और इस प्रकार अमन और कानून की रक्षा के नाम पर जमीन पर व्यक्तिगत अधिकार और सामन्तशाही शोषण को पनाह देती है। तेलंगाना में भारत सरकार ने अपने इसी स्वरूप का परिचय दिया था।

अब सवाल उठता है कि यह राजसत्ता है क्या?

आमतौर पर राजसत्ता शब्द में उन सभी संस्थाओं का बोध होता है जो किसी केन्द्रीय सरकार के नीचे काम करती हैं, जैसे सरकारी पदाधिकारी, फौज, पुलिस, जेल, कचहरी आदि। दूसरे शब्दों में ऊपर की सभी संस्थाओं के जोड़ को राजसत्ता कहते हैं। इसमें से किसी एक विभाग को राजसत्ता नहीं कह सकते, अर्थात अकेले पुलिस या अकेले फौज राजसत्ता नहीं है। राजसत्ता में फौज, पुलिस आदि सब शामिल हैं।

राजसत्ता एक तरफ तो आदमियों को सरहदों के दायरों में बाँधती है और दूसरी तरफ जनता से अलग और उसके ऊपर एक हथियारबन्द संगठन कायम करती है, क्योंकि समाज के श्रेणियों में बँट जाने के बाद सबके सहयोग से लोगों का हथियारबन्द संगठन सम्भव नहीं रहा। राजशक्ति के यह हथियारबन्द संगठन हर राजसत्ता के जरूरी अंग है। शोषितों को दबाकर रखने में इन हथियारों में सिर्फ फौज और पुलिस ही नहीं, बल्कि जेल, अदालत दमनकारी कानून आदि सब शामिल हैं जिनका प्रारम्भिक समाज में किसी ने नाम तक न सुना था।

फौज, पुलिस, जेल, दमनकारी कानून यह सब आतंक जमाने के साधन हैं। सच तो यह है कि आतंक के आधार पर ही राजसत्ता की इमारत खड़ी होनी है। लेनिन ने कहा था 'हिंसा का एकाधिकार ही राजसत्ता है।' अमन और कानून के नाम पर राजसत्ता लाठीचार्ज करती है, गोलियाँ चलाती है, लोगों को पकड़कर जेलों में बन्द करती है, फाँसियाँ देती है। और यह अमन, कानून या कानूनी शासन है क्या? इसका मतलब है जमींदारों का लगान वसूल होता रहे, पूँजीपतियों के हाथों में कल-कारखाने कायम रहें, महाजन को सूद मिलता रहे।

देश की जनता की मर्जी के खिलाफ अगर राज का काम चलाना है तो आतंक का सहारा लेना ही पड़ेगा। लाखों करोड़ों मजदूर और किसान अपने पसीने की कमाई पूँजीपतियों और जमींदारों को देते हैं, यह प्रथा अगर चालू रखनी है तो भाड़े के आदमी रखकर उनकी मदद से जनता को डरा-धमकाकर काबू में रखना ही पड़ेगा।

वर्ग समाज में सरकारें इसी तरह के कानूनी आतंक के सहारे चलती है और उनके नीचे जनता की आजादी कहने भर को रह जाती है। यह बात हमारी भारत सरकार पर भी पूरे तौर पर लागू है। जनता को यह आये दिन अहिंसा का पाठ पढ़ाया करती है और खुद हिंसा की बपौती ले बैठी है। आये दिन निहत्थे मजदूरों

और किसानों, विद्यार्थियों और अध्यापकों पर लाठी चार्ज और गोली वर्षा की खबरें अखबारों में आती ही रहती हैं। काले कानूनों के मातहत जनता के कार्यकर्ताओं से जेलें भरती ही रहती हैं।

जनता को दबाकर रखने के लिए बनायी गयी इन संस्थानों को चलाने के लिए पैसे की जरूरत पड़ती है। शोषक वर्ग यह पैसा भी जनता पर तरह-तरह के कर या टैक्स लगाकर उसी से वसूल करता है। अरबों रुपया देश के कोने-कोने से सरकारी खजाने में जमा होता है। इस रुपये से जनता के ही लोग भाड़े पर फौज में भर्जी किये जाते हैं और फिर इन्हीं लोगों से जनता के ही ऊपर लाठी चार्ज होता है, गोलियाँ चलवायी जाती हैं।

पैदावार चालू रखने के लिए शोषक वर्ग दूसरे मेहकमें भी कायम करता है जिन्हें आम तौर पर "राजस त्ता के जनहितकारी काम" कहते हैं। मिसाल के तौर पर नहरों की व्यवस्था। जैसे-जैसे समाज का विकास होता है वैसे-वैसे राजसत्ता के यह काम बढ़ते जाते हैं नहर विभाग, यातायात, अस्पताल, शिक्षा, डाकतार, न्याय आदि। इस प्रकार इन सब कामों को लेकर राजसत्ता का एक 'सिविल' या असैनिक मेहकमा खड़ा हो जाता है। सैनिक (दमनकारी संस्थाएँ) और गैर-सैनिक (सिविल) यह दोनों मेहकमें राजसत्ता नाम की मशीन के पूर्जे हैं। और इन मेहकमों के जोड़ को राजसत्ता कहते हैं।

लेकिन यह तो हुई राजसत्ता के ऊपरी स्वरूप की बात। उसकें असली अर्थात वर्ग स्वरूप को समझने के लिए हमें उसके जन्म की कहानी का पता लगाना पड़ेगा।

राजसत्ता का जन्म

राजसत्ता के असली स्वरूप को समझने के लिए हमें देखना पड़ेगा कि कैसे और किसके फायदे के लिए उसका जन्म हुआ, कैसे वह बढ़कर आज की हालत में आयी और कैसे समय-समय पर वह किसी न किसी वर्ग विशेष के हाथ की कठपुतली बनकर उसी के स्वार्थों को पूरा करती आयी है। इसको समझकर ही हम उसके भविष्य को भी समझ सकेंगे।

मार्क्सवाद परिचय माला की दूसरी किताब 'पूँजीवादी समाज' में बताया जा चुका है कि इतिहास में एक ऐसा भी समय था जब समाज में श्रेणियाँ न थीं। उस समय समाज के सभी लोगों के हित एक थे। सब मिलकर कमाते थे और पायी हुई चीज को सब मिलकर काम में लाते थे। लोगों के हितों में टकराव न होने के कारण समाज व्यवस्था और सब कामों की देख-रेख रस्मों के सहारे बड़े-बूढ़े लोग करते रहते थे। सब लोग अपने बड़े-बूढ़ों की इज्जत करते थे और उनके कहने पर चलते थे। अगर कोई बाहरी दुश्मन कबीले पर हमला करता था तो अपने बड़े-बूढ़ों के नेतृत्व में सब लोग मिलकर उसका सामना करते थे। इसी तरह अगर समाज

का कोई आदमी कबीले की रस्मों को तोड़ता था तो सब मिलकर उसके खिलाफ कार्रवाई करते थे। उस समाज में अमन कायम रखने के लिए या बाहरी शत्रुओं से रक्षा के लिए जनता से अलग और जनता से ऊपर ''राजसत्ता'' जैसे किसी संगठन की जरूरत न थी।

धीरे-धीरे जैसे-जैसे पैदावार के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार बढ़ा (देखिये परिचय माला की दूसरी किताब ''पूँजीवादी समाज'') वैसे-वैसे समाज भी अलग-अलग श्रेणियों में बँट गया। समाज का यह बँटवारा सबसे पहले गुलामों के मालिक व गुलामों की शक्ल में सामने आया। मालिकों का हित था गुलामों को अधिक से अधिक चूसने में, उनसे काम लेने में और गुलाम चाहते थे शोषण से छुटकारा पाना। ऐसी हालत में दास प्रथा या गुलामों की व्यवस्था चालू रखने के लिए यह जरूरी था कि गुलामों के मालिक हथियारों से लैस आदमियों का एक ऐसा संगठन कायम करें जिसके द्वारा समय पड़ने पर वे गुलामों की बगावत को दबाकर 'अमन' कायम रख सकें, गुलामों को काम करने पर मजबूर कर सकें और कोई गुलाम भागने की कोशिश करे तो उसे सजा दे सकें। हथियारबन्द लोगों का यह संगठन राजसत्ता की पहली शुरूआत थी। इतिहास के हर युग में इस तरह के हथियारबन्द जत्थे, फौज, पुलिस आदि राजसत्ता के जरूरी अंग रहे हैं और इनका काम रहा है समाज पर सम्पत्ति के मालिक वर्ग की हुकूमत को कायम रखना। यह बात दास युग, सामन्तवादी युग और पूँजीवादी युग तीनों पर एक जैसी लागू होती है।

इतिहास में समय-समय पर आर्थिक व्यवस्था और उसके साथ श्रेणी संघर्ष का रूप बदलता रहा लेकिन राजसत्ता ने हर समय एक ही काम पूरा किया है वह है उस समय की समाज व्यवस्था की रक्षा व हिफाजत और हुकूमत करनेवाले वर्ग (वह वर्ग जिसके हाथ में पैदावार के साधन होते हैं) की व्यवस्था को समाज के बाकी लोगों पर जबरदस्ती लादना। दासप्रथा के युग में राजसत्ता मालिकों के हक में गुलामों को दबाती थी, सामन्तवादी युग में वह राजाओं, सामन्तों, जागीरदारों के हितों की रक्षा करती थी और किसान व कम्मियों पर सामन्तवादी व्यवस्था लादती थी। इसी तरह पूँजीवादी युग में राजसत्ता पूँजीपतियों की सम्पत्ति और पूँजीवादी शोषण व्यवस्था की रक्षा करती है और समाजवादी राजसत्ता मजदूर वर्ग के हित में समाजवादी व्यवस्था की रक्षा करती है और मजदूरों व मेहनतकशों के वर्ग शत्रुओं को दबाती है।

हमने देखा कि समाज में श्रेणियों के जन्म के साथ ही राजसत्ता का भी जन्म हुआ और उससे पहले राजसत्ता नाम की कोई चीज समाज में न थी।

हमने यह भी देखा कि राजसत्ता का जन्म एक विशेष प्रकार की सामाजिक व्यवस्था में हुआ था और चाहे कोई उसे अच्छा समझे या बुरा, एक विशेष सामाजिक अवस्था में उसका अस्तित्व समाप्त हो जायेगा।

एंगेल्स के शब्दों में 'राजसत्ता किसी भी प्रकार से कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो

समाज पर बाहर से लादी गयी है।...राजसत्ता समाज के विकास की एक निश्चित अवस्था में उसकी उपज है। राजसत्ता का होना यह मतलब रखता है कि समाज इस प्रकार के अन्तरविरोधों में फँस गया है जिन्हें हल नहीं किया जा सकता, वह दो विरोधी शक्तियों में बँट गया है जिनमें मेल नहीं हो सकता, जिनसे छुटकारा पाने में वह असमर्थ है और कहीं यह विरोधी शक्तियाँ, विरोधी आर्थिक हितोंवाले ये वर्ग अपने निष्फल संघर्ष में एक-दूसरे को तथा स्वयं समाज को निगल न जायें, इसके लिए (राजसत्ता जैसी) एक ऐसी शक्ति की आवश्यकता होती है जो कि इन विरोधी शक्तियों के संघर्ष की उग्रता को कम कर सके और उन्हें व्यवस्था की सीमाओं के भीतर रख सके और यह शक्ति जो समाज से पैदा होती है, लेकिन जो अपने को समाज के ऊपर रखती है और क्रमशः अपने को समाज से पृथक कर लेती है यही राजसत्ता है।

राजसत्ता का वर्ग स्वरूप

समाज में पैदावार के साधनों पर जिस वर्ग का अधिकार होता है या यों कहिये कि समाज में आर्थिक दृष्टि से जो वर्ग ऊँचा होता है वह अपनी आर्थिक ताकत के सहारे राजनीतिक ताकत पर भी अधिकार कर लेता है और फिर राजनीतिक ताकत के सहारे मेहनतकश वर्ग का शोषण करता है और उसे दबाकर रखता है। मालिक वर्ग या पैसावाला वर्ग राजसत्ता को समाज के दूसरे लोगों के खिलाफ राजनीतिक हथियार के तौर पर इस्तेमाल करता है और इस तरह उसके जरिये अपनी आर्थिक ताकत को और मजबूत बनाता है।

इतिहास हमें बताता है कि जबसे समाज श्रेणियों में बँटा तभी से "हथियारबन्द ताकत" की भी बुनियाद पड़ी और तभी से हुकूमत करनेवाला वर्ग इस "हथियारबन्द ताकत" को शोषितों, दलितों और गरीबों को दबाने के लिए इस्तेमाल करता है।

सिविल या गैर सैनिक मेहकमे में भी हुकूमत करनेवाले वर्ग का ही स्वार्थ पूरा करते हैं और इस प्रकार वे भी अपने समय की आर्थिक व्यवस्था को कायम रखने के औजार के अलावा और कुछ नहीं हैं। मिसाल के तौर पर जब राजसत्ता शिक्षा का भार अपने ऊपर लेती है तो उसका मुख्य उद्देश्य होता है शोषकवर्ग के बच्चों को हुकूमत करना और गरीबों के बच्चों को क्लर्की करना, नौकरी करना, अफसरों के सामने सर झुकाना आदि सिखलाना। रेलों और सड़कों का जाल मुख्यतः इसलिए बिछाया जाता है कि पूँजीपतियों का तैयार माल आसानी से देश के एक कोने से दूसरे कोने पर पहुँचाया जा सके और वहाँ का कच्चा माल औद्योगिक केन्द्रों पर लाया जा सके। इसके अलावा जरूरत पड़ने पर "अमन और कानून" की रक्षा में जल्द से जल्द सेनाओं को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाया जा सके और शोषण के खिलाफ जनता की बगावत को आसानी से दबाया जा सके। यह सही है कि शोषक वर्ग द्वारा अपने स्वार्थ के लिए बनायी गयीं इन रेलों व सड़कों से जनता

को काफी सहूलियत हो जाती है, किन्तु शोषक वर्ग के सामने मुख्य उद्देश्य जनता की सहूलियत नहीं होता। यही बात राजसत्ता के सभी मेहकमों के बारे में कही जा सकती है।

अपने देश की सरकार को ही लीजिए। कहने को तो यह जनवादी सरकार है जिसे जनता के चुने हुए लोग चलाते हैं। लेकिन अगर हम इस सरकार के अभी तक के पिछले कारनामों पर एक सरसरी निगाह डालें तो फौरन पता चल जायेगा कि इसका वर्ग स्वरूप क्या है, अर्थात वह किसकी राजसत्ता है।

पिछले सालों में जहाँ कहीं भी रियासतों की जनता ने रजवाड़ों, नवाबों और जागीरदरों के खिलाफ जमीन की लड़ाई छेड़ी उन जगहों पर यह सरकार सामन्तवादियों की सरकार के लिए पहुँची। उसने राजाओं, नवाबों की रक्षा में गरीब किसानों के घर उजाड़े, उन पर गोलियाँ चलायीं और आतंक का राज कायम किया। निजाम की रक्षा में तेलंगाना के किसानों पर किये गये जुल्मों की कहानी अभी ताजी है। सरकार ने रजवाड़ों की दौलत और जायदाद को जब्त नहीं किया, उलटे उनके लिए इस दौलत और जायदाद के अलावा करोड़ों रुपयों का गुजारा बाँध दिया। इसी तरह उसने जमींदारी खत्म करने के नाम पर ऐसी योजनाएँ बनायीं जिनसे जमींदारों को चार अरब रुपया मुआवजा दिया गया। इससे साफ जाहिर होता है कि यह सरकार सामन्तवादियों के हितों की रक्षा करती है। औद्योगिक क्षेत्र में इस सरकार की नीति इजारेदारों, मुनाफाखारों और कालेबाजारवालों को फायदा पहुँचती है।

अंग्रेजों के आने से पहले भारत में सामन्तवादियों की राजसत्ता थी। फिर उस पर अंग्रेजों का अधिकार हुआ और वह हमारे देश की जनता को कुचलने के लिए अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन गयी। अंग्रेजों के समय राजसत्ता हम पर विदेशी गुलामी लादने के लिए साम्राज्यवादियों के हाथ का सीधा हथियार थी और उससे साम्राज्यवादियों के हितों की रक्षा होती थी।

पिछली लड़ाई के बाद देश में जो संघर्ष हुए उनसे अंग्रेजों ने देखा कि पुराने तरीके से भारतीय जनता का शोषण करना आसान नहीं रहा। देश के इजारेदार पूँजीपति भी क्रान्तिकारी उभार से डरे हुए थे। इस परिस्थिति में दोनों में समझौता हो गया और अंग्रेजों ने 1947 में देश की शासन सत्ता भारतीय पूँजीपति वर्ग को सौंप दी। अब राजसत्ता पर देश के इजारेदारों, पूँजीपतियों और सामन्तवादियों का अधिकार है। इस राजसत्ता का अंग्रेजी साम्राज्यवादियों से कॉमनवेल्थ की सदस्यता के रूप में गहरा सम्बन्ध है। इस राजसत्ता का काम है इजारेदारों, बड़े-बड़े पूँजीपतियों और सामन्तशाहों के हितों की रक्षा करना और उनकी सम्मिलित और अलग-अलग लूट के खिलाफ जनता की क्रान्तिकारी भावनाओं को दबाकर रखना। यह इसका वर्ग स्वरूप है।

दूसरा सबक

पूँजीवादी राजसत्ता

सामन्तवादी युग में पैदावार का तरीका भी सामन्तवादी था। धीरे-धीरे सामन्तवादी ढाँचे के अन्दर ही पैदावार के पूँजीवादी तरीकों का जन्म हुआ। पूँजीपति आये लेकिन राजसत्ता पर अब भी सामन्तों का अधिकार था। यह राजसत्ता सामन्तवादी शोषण को बढ़ावा देती थी और पूँजीपति चाहते थे समाज पर अपना शोषण लादना। दोनों में संघर्ष हुआ। जनता सामन्तशाहों के जुल्मों से परेशान थी। पूँजीपतियों की असली शक्ल उस समय तक उनके सामने नहीं आयी थी। सामन्तवादी अत्याचार से छुटकारा दिलाने के नाम पर नये पूँजीपति वर्ग ने जनता से अपील की और उसकी सहायता से सामन्तवादी राजसत्ता पर अधिकार कर लिया। पूँजीवादी राजसत्ता के विकास का सबसे अच्छा उदाहरण इंग्लैण्ड की राजसत्ता है।

इंग्लैण्ड के नये उठते हुए पूँजीपति वर्ग ने फार्मों पर खेती करनेवाले किसानों और सौदागरों की सहायता से पहले इंग्लैण्ड की संसद में प्रतिनिधित्व हासिल किया। पार्लियामेंट में पहुँचकर उन्होंने तिजारत और उद्योग धन्धों पर रुकावटों और सामन्तवादी करों का विरोध किया। राजा इस नये वर्ग को दबाने के लिए राजसत्ता का पूरा इस्तेमाल करता था। फलस्वरूप 1540 में पूँजिपति वर्ग ने कॉमवेल के नेतृत्व में राजा और उसकी राजसत्ता के खिलाफ हथियारबन्द बगावत का ऐलान कर दिया।

इस विद्रोह में इंग्लैण्ड की सामन्तवादी ताकतों की हार हुई और वहाँ के राजा चार्ल्स प्रथम को फाँसी दे दी गयी। पूँजीपति वर्ग ने इस क्रान्ति में इंग्लैण्ड के मजदूर वर्ग की सहायता से सफलता हासिल की थी। क्रान्ति के बाद इस मजदूर वर्ग ने जनवादी अधिकारों की माँग की। पूँजीपति वर्ग ने सामन्तवाद से समझौता कर लिया और राजसत्ता की सारी शक्ति बटोरकर मजदूरों के आन्दोलन को कुचलने के लिए उस पर टूट पड़ा। उधर पार्लियामेंट और सरकार में अपने असर से फायदा उठाकर उसने राजसत्ता में अपने हक में काफी हेर-फेर किये और ऊँचे सरकारी पदों पर अपने वर्ग के आदमियों को बिठा दिया। क्रान्ति के फलस्वरूप सामन्तवादी रुकावटें हट जाने से पूँजीवाद का विकास भी तेजी के साथ आरम्भ हुआ। इससे औद्योगिक पूँजी की तरक्की के साथ-साथ जहाँ एक तरफ उद्योगपतियों को प्रधानता मिली वहाँ दूसरी तरफ सर्वहारा वर्ग की भी संख्या बढ़ी।

सर्वहारा वर्ग के आन्दोलनों और संघर्षों के फलस्वरूप 1832 में पूँजीपति वर्ग को कुछ सुधार लागू करने पर मजबूर होना पड़ा। लेकिन 1832 के सुधार कानून

के दो साल बाद पूँजीपति वर्ग ने राजसत्ता की सहायता से मजदूर सभाओं, यूनियनों पर रोक लगायी और उनके चार्टिस्ट आन्दोलन को (1821-48) निर्दयतापूर्वक दबाया। इंग्लैण्ड के इतिहास में यह एक दर्दनाक कहानी है।

जिस समय अपने देश के अन्दर पूँजीपति वर्ग शोषित वर्ग को राजसत्ता के सहारे कुचल रहा था ठीक उसी समय देश से बाहर राजसत्ता की नौ सेना और फौज के सहारे भारतवर्ष, एशिया और अफ्रीका के अन्य देशों को गुलाम बनाकर वहाँ अपने बाजार कायम कर रहा था।

हमने देखा कि पूँजीवादी जनवाद में मजदूरों द्वारा कुछ सुधार हासिल किये जाने के बावजूद बुनियादी तौर पर राजसत्ता के वर्गीय स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता। वह शोषक वर्ग के हित में शोषित वर्ग को दबाने का हथियार बनी रहती है।

शुरू के दिनों में जब उपनिवेशों की लूट और वहाँ के बाजारों के मुनाफे में काफी बरकत चल रही थी तो पूँजीपति नहीं चाहते थे कि एक दिन के लिए भी कारखाने बन्द हों, वे चाहते थे कि सब झगड़े आपस में शान्तिपूर्वक तय हो जायें। इसलिए मजदूर संगठनों की ताकत से दबकर उन्होंने मजदूरों को कुछ वैधानिक सुविधाएँ दीं और मजदूरों के खासे हिस्से को मत देने का अधिकार मिल गया।

इसमें सन्देह नहीं कि वह सुविधाएँ मजदूर वर्ग के लिए निश्चित जीत थी लेकिन इससे पूँजीपति वर्ग को भी मजदूरों को गुमराह करने का नया हथियार मिल गया। मजदूरों के नेताओं में और उन मजदूरों में जो औरों की बनिस्बत कुछ अच्छी मजदूरी पाते थे यह धारणा पैदा हो गयी कि पूँजीवादी राजसत्ता के वर्गीय स्वरूप को पूँजीपति वर्ग की इच्छा और सहयोग से, वैधानिक उपायों से बदला जा सकता है। इस धारणा ने मजदूर आन्दोलन में सुधारवाद के जहरीले कीड़ों को जन्म दिया।

आज के दिन पूँजीवादी राजसत्ता एक दुमुही तस्वीर है। एक तरफ मजदूरों के वर्ग संगठनों को कुचलने के लिए प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्यवादी देशों और सोवियत तथा अन्य समाजवादी देशों के खिलाफ लड़ाई की तैयारी के लिए और उपनिवशों को गुलाम बनाये रखने और उनके आजादी के आन्दोलनों को दबाने के लिए हर पूँजीवादी देश की पुलिस और सैनिक शक्ति में बेहिसाब बढ़ती की गयी है। यह तस्वीर का एक पहलू है। दूसरी तरफ पूँजीपति वर्ग तथा मजदूर वर्ग के सम्बन्धों को शान्तिपूर्वक वैधानिक दायरे के अन्दर ही सीमित रखने की गरज से सरकारी श्रम विभाग, समझौता बोर्ड (कांसिलियेशन बोर्ड), पंचायत अदालतें (आर्विट्रेशन बोर्ड) आदि का जाल बिछाया गया है। मजदूरों को गुमराह करने के लिए प्रचार के नये तरीके काम में लाये जा रहे हैं, जैसे लेबर वेलफेयर सेन्टर आदि। यह तस्वीर का दूसरा पहलू है। सुधारवादी नेता मजदूरों के सामने तस्वीर का यह दूसरा, नकली चेहरा ही पेश करते हैं।

पूँजीवादी जनवादी राजसत्ता में भी खास सरकारी ओहदों पर पूँजीपतियों के

अपने आदमी (उसके घर के या उनके खरीदे हुए) ही काम करते हैं। राजसत्ता जनवाद के नाम पर पूँजीपति वर्ग के हितों की रक्षा करती है, उनके शोषण के अधिकार की रक्षा करती है। जब तक सम्भव होता है तब तक यह काम चलता है। जब इस जनवाद की आड़ में धोखेबाजी से काम नहीं चलता है तब शोषक वर्ग फौज और पुलिस के सहारे अपने स्वार्थ की रक्षा करता है जैसा कि 1970-71 में हमारे देश के पूँजीपति वर्ग ने कांग्रेस के माध्यम से बंगाल में किया था।

आजकल पूँजीवादी दुनिया में दो तरह के जनतंत्रवादी देश हैं। एक वे देश जहाँ राजा मौजूद हैं लेकिन वहाँ की सरकार पार्लियामेंट के प्रति उ त्तरदायी होती है, जैसे इंग्लैड। दूसरे वे देश हैं जहाँ राजा नहीं हैं। यह देश प्रजातंत्र कहे जाते हैं और कहने के लिए यहाँ सारी ताकत पार्लियामेंट की होती है जैसे अमरीका, फ्रांस आदि। पार्लियामेंट या लोकसभा की सत्ता दोनों तरह के पूँजीवादी जनतंत्रवादी देशों में ऊँची मानी जाती है। ऊपर कहे गये दोनों प्रकार के देशों में एक तरफ तो पार्लियामेंट या लोकसभा होती है जहाँ अलग-अलग राजनीतिक पार्टियाँ अलग-अलग वर्गों का या किसी वर्ग के एक हिस्से का प्रतिनिधित्व करती है और दूसरी तरफ पुलिस और नौकरशाही होती है जो पूरी तौर पर पूँजीपति वर्ग के कब्जे में होती है क्योंकि इनके सभी ऊँचे पदाधिकारी या तो सीधे पूँजीपतियों के घराने से आते हैं, या उनके खरीदे हुए टुकड़ाखोर होते हैं। जब तक पार्लियामेंट में बहुमत शोषक वर्ग का रहता है तब तक पार्लियामेंट और नौकरशाही में कोई विरोध नहीं दिखायी देता। पार्लियामेंट के बनाये कानूनों पर नौकरशाही अर्थात फौज, पुलिस आदि वफादारी के साथ अमल करते रहते हैं। वे अपने को पार्लियामेंट अर्थात जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों का वफादार नौकर कहते हैं। फौज, पुलिस, जेल आदि के ऊँचे पदाधिकारी कहते हैं हमें क्या हम तो जनता के नौकर हैं। जनता जिसे चुनकर पार्लियामेंट में भेजेगी हम उसी का हुक्म बजाने लगेंगे। जनता के कुछ भोले लोगों के सामने नौकरशाही इस प्रकार की निष्पक्षता की चादर ओढ़ने में सफल हो जाती है। लेकिन पार्लियामेंट के प्रति उसकी यह वफादारी उसी समय तक कायम रहती है जब तक पार्लियामेंट में शोषक वर्ग के प्रतिनिधियों का बहुमत रहता है। ज्यों ही पार्लियामेंट में मजदूर वर्ग और जनता के प्रतिनिधियों का बहुमत हो जाता है (और हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि पूँजीवादी समाज में जनता के प्रतिनिधियों का बहुमत कोई आसान काम नहीं है) त्यों ही राजसत्ता अपनी वफादारी और निष्पक्षता उठाकर ताक पर रख देती है और जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के खिलाफ खुले विद्रोह का एलान कर देती है। 1936 में यही हुआ था और अभी हाल में पूर्वी पाकिस्तान में भी अमरीका भक्त मुस्लिम लीग पार्टी चुनाव में हार गयी थी तो वहाँ भी फौज का सहारा लेकर जनतंत्र का गला घोंट दिया गया था। और बंगला देश में अवामी लीग का बहुमत हो जाने पर याहिया खाँ ने भी वैसा ही किया।

अगर किसी देश में पूँजीवादी जनवाद के फलस्वरूप मजदूर वर्ग की ताकत बढ़ जाती है और उनके संगठन मजबूत हो जाते हैं तो वहाँ की राजसत्ता मजदूर वर्ग के जनवादी अधिकारों पर रोक लगाना आरम्भ कर देती है। कभी-कभी पूँजीपति वर्ग मजदूर वर्ग की बढ़ती हुई ताकत से घबराकर जनवाद का जामा ही उतार फेंकता है और वहाँ फासिस्ट सरकारें कायम कर लेता है। लड़ाई से पहले इटली, जर्मनी, जापान आदि देशों में यही हालत थी।

हमने देखा कि पूँजीवादी समाज में राजसत्ता चाहे वह पूँजीवादी जनतंत्रवादी राजसत्ता हो और चाहे फासिस्ट राजसत्ता, हमेशा शोषक वर्ग के हितों की रक्षा करती है। इस हालत में मजदूर वर्ग पूँजीवादी शोषण से तब तक छुटकारा नहीं पा सकेगा जब तक वह इस राजसत्ता पर अपना अधिकार जमाकर उसके सारे कलपुर्जों को नये सिरे से खड़ा नहीं करता।

दूसरे शब्दों में समाजवाद स्थापित करने के लिए सबसे पहले मजदूर वर्ग को पूँजीवादी राजसत्ता को पूरी तरह खत्म कर उसके स्थान पर एक नयी, मजदूर वर्ग की, राजसत्ता खड़ी करनी पड़ेगी। मौजूदा पूँजीवादी राजसत्ता में कुछ सुधार या हेर-फेर करके इस काम को पूरा नहीं किया जा सकता।

तीसरा सबक

समाजवादी राजसत्ता

समाजवादी राजसत्ता मजदूर वर्ग की राजसत्ता है। मजदूर वर्ग ने पहले-पहले 1871 में फ्रांस की राजधानी पेरिस में "पेरिस कम्यून" के नाम से अपनी राजसत्ता कायम की थी। इतिहास में मजदूरों की यह पहली हुकूमत थी जो करीब तीन महीने तक कायम रहकर देशी व विदेशी पूँजीपतियों की मिली-जुली ताकत का शिकार हुई। इस राजसत्ता ने अपनी तीन महीने की जिन्दगी से ही दुनिया के मजदूरों को जो नसीहत दी, वह आज भी राजसत्ता की लड़ाई में उनका नेतृत्व करती है। पेरिस के मजदूरों ने पुरानी पूँजीवादी फौज और उसके अफसरों पर यकीन नहीं किया और उसे तोड़कर आम जनता में हथियार बाँटे, अर्थात जनता की फौज कायम की। पुलिस का पुराना मेहकमा तोड़कर जनता की फौज कायम की। पुराने मजिस्ट्रेटों, जज, अदालतें तोड़कर जनता की नयी अदालतें कायम कीं जिनमें जनता द्वारा चुने हुए जज और मजिस्ट्रेट काम करते थे। भ्रष्ट, रिश्वतखोर या नाकाबिल जजों को जनता जब चाहे वापस बुला सकती थी। पेरिस कम्यून ने दुनिया के मजदूरों को बतलाया कि अपनी हुकूमत कायम करने के लिए मजदूर वर्ग को पूँजीवादी राजसत्ता और उसके कलपुर्जों

को तोड़कर उसकी जगह एक नयी, मजदूर वर्ग की राजसत्ता स्थापित करनी पड़ेगी।

पेरिस कम्यून की शिक्षाओं के आधार पर लेनिन और रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में रूस के मजदूरों ने नवम्बर 1917 में हुकूमत पर विजय पायी। ताकत हाथ में आते ही उन्होंने राजसत्ता की पुरानी मशीन को तोड़कर मजदूर वर्ग के नेतृत्व में नयी राजसत्ता स्थापित की। पुरानी फौज की जगह लाल फौज, पुरानी अदालतों की जगह जनता द्वारा चुने गये जजों की नयी जन-अदालतें आदि। रेलों, कारखानों, सभी सरकारी मेहकमों, स्कूलों, विश्वविद्यालयों आदि में भी इसी तरह की तब्दीलियाँ की गयीं। प्रेस और रेडियो पूँजीपतियों के हाथों से छीनकर मजदूरों के प्रतिनिधियों को सौंप दिये गये। मजदूर जानते थे कि पूँजीवादी राजसत्ता उन्हें समाजवाद की ओर आगे बढ़ने से रोकेगी और उनके रास्ते में तरह-तरह की रुकावटें पैदा करेगी। इसीलिए उस राजसत्ता को तोड़कर उन्होंने नयी राजसत्ता कायम की जिसका काम था पुराने हुकूमत करनेवाले वर्गों के विरोध को कुचलना, दूसरे देशों के पूँजीपतियों के हस्तक्षेप से लड़ना और समाजवाद की लड़ाई को आगे बढ़ाना।

क्रान्ति से पहले की राजसत्ता पूँजीवादी राजसत्ता थी। उनमें जनवाद था दस फीसदी शोषक वर्ग के लिए और तानाशाही थी 90 फीसदी मजदूरों और किसानों पर। नयी राजसत्ता मजदूरों और किसानों की राजसत्ता थी इसमें जनवाद था 90 फीसदी जनता के लिए और तानाशाही थी 10 फीसदी शोषकों पर जिससे वे फिर से उठ खड़े न हो सकें। इस माने में मजदूर वर्ग की राजसत्ता भी जनता के शत्रुओं को दबाकर रखने का एक हथियार है।

सर्वहारा वर्ग का एकाधिपत्य

सर्वहारा वर्ग राजसत्ता पर इसलिए अधिकार नहीं जमाता है कि सबको सब कुछ करने की आजादी दे दी जाय। जिस तरह अभी तक पूँजीपति वर्ग राजसत्ता का मेहनतकशों को दबाने के लिए इस्तेमाल करता आया है ठीक उसी तरह मजदूर वर्ग भी यह ऐलान करने में कोई संकोच नहीं करता है कि वह भी राजसत्ता को अपने वर्ग शत्रुओं को दबाकर रखने के लिए इस्तेमाल करेगा। अन्तर सिर्फ इतना है कि पूँजीवादी राजसत्ता पूँजीपति वर्ग यानी अल्पमत के हितों को पूरा करती है और जनता यानी बहुमत की इच्छाओं को दबाती है और इसलिए वह कितना ही जनवाद का जामा क्यों न लपेटे, दरअसल वह जनवादी नहीं है। दूसरी तरफ मजदूर वर्ग की राजसत्ता बहुमत के हितों को पूरा करती है इसलिए सही माने में जनवादी राजसत्ता है, वह शोषक वर्ग यानी जनता के दुश्मनों को, जो संख्या में बहुत कम हैं, जनहित में दबाती है। इस मानी में वह शोषक वर्ग पर सर्वहारा वर्ग का एकाधिपत्य या अधिनायकत्व है।

सर्वहारा वर्ग जानता है कि राजसत्ता हाथ से निकल जाते ही पूँजीपति वर्ग

की ताकत का अन्त नहीं हो जाता और न ही सदियों के पुराने संस्कारों से मनुष्य एक ही दिन में छुटकारा पा सकता है। ताकत हाथ से निकल जाने के बाद भी हजार उपायों, तिकड़मों और षड़यंत्रों के सहारे शोषक वर्ग फिर अपनी शोषण की व्यवस्था चालू करने की कोशिश करता है। अपने दुश्मनों की इन हरकतों को पकड़ने, उन्हें दबाने और उनसे बचते रहने के लिए ''सर्वहारा वर्ग अपना एकाधिपत्य कायम करता है। स्तालिन के शब्दों में **''सर्वहारा एकाधिपत्य सर्वहारा वर्ग का राजनीतिक प्रभुत्व है और पूँजी के शासन को बलपूर्वक समाप्त करने का साधन है।''**

पूँजीवादी समाज के गर्भ में मजदूर और किसान अर्थात शोषित वर्ग अपने जनवादी अधिकारों की लड़ाई शुरू करता है। लड़ाई में एक ऐसी हालत आ जाती है जब पूँजीवादी राजसत्ता संघर्ष के दबाव को और अधिक बर्दाश्त न कर सकने के कारण भहराकर गिर पड़ती है। समाज में क्रान्ति होती है। तब मजदूर वर्ग पुरानी राजसत्ता के कूड़ा-करकट को दफनाकर उसकी जगह नयी सर्वहारा वर्ग की राजसत्ता खड़ी करता है। राजसत्ता पर अधिकार पाने के साथ-साथ मजदूर वर्ग की जनवाद की लड़ाई का अन्त हो जाता है। नवम्बर 1917 में रूस के मजदूरों ने जनवाद की लड़ाई में विजय पायी और पूँजीवादी राजसत्ता की जगह सर्वहारा वर्ग की राजसत्ता कायम की। यह हारे हुए शोषक वर्ग पर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व था।

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र (मजदूर वर्ग की तानाशाही) समाजवादी राजसत्ता का सार है। जो लोग सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र की आवश्यकता से इनकार करते हैं वे असलियत को मानने से इनकार करते हैं। इस तरह की विचारधारा अन्त में सिर्फ पूँजीपति वर्ग की तानाशाही को कायम रखने में सहायक है।

काल मार्क्स ने एक जगह पर लिखा था कि ''पूँजीवादी समाज और कम्युनिस्ट समाज के बीच में एक समाज के दूसरे में क्रान्तिकारी परिवर्तन का युग भी होता है। इसी से मिलता-जुलता एक राजनीतिक परिवर्तन का युग भी होता है जिसमें राजसत्ता सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी अधिनायकतंत्र के अलावा और कुछ भी नहीं हो सकती।''

लेनिन के अनुसार सर्वहारा वर्ग के अधिनायतंत्र की आवश्यकता ''इस पूरे ऐतिहासिक युग के लिए होती है जो पूँजीवाद को वर्गहीन समाज अर्थात कम्युनिज्म से पृथक करता है।''

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र एक ऐसे वर्ग का अधिनायकतंत्र है जो शोषक नहीं है। यह अधिनायकतंत्र इतिहास के दूसरे सभी अधिनायकतंत्र से भिन्न है क्योंकि वे सभी अधिनायकतंत्र अल्पमत के इस या उस शोषक वर्ग के अधिनायकतंत्र रहे हैं जिनका उद्देश्य शोषक वर्ग की शोषण प्रणाली को सुरक्षित रखना है। जबकि सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र का उद्देश्य है समाज के बहुमत के हित में अल्पमत पर अंकुश लगाना उसकी शोषण प्रणाली को समाप्तकर मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की प्रथा का अन्त करना।

इन अर्थों में सर्वहारा का अधिनायकतंत्र एक विशेष प्रकार की राजसत्ता है।

सर्वहारा वर्ग की यह विशेष प्रकार की राजसत्ता उस समय तक रहेगी जब तक कम्युनिज्म नहीं कायम हो जाता। जो लोग शुद्ध जनवाद के नाम पर, यह कहकर कि अब परिस्थितियाँ बदल गयी हैं, मजदूर वर्ग की राजसत्ता के इस रूप को बीच में ही छोड़ देना चाहते हैं, उन्हें जवाब देते हुए अपनी पुस्तक ''सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार का। उत्स्की' में लेनिन ने लिखा था

''पूँजीवाद से कम्युनिज्म तक का संक्रमण एक ऐतिहासिक युग का प्रतिनिधित्व करता है। जब तक इस युग का अन्त नहीं हो जाता तब तक शोषक वर्ग अनिवार्य रूप से अपना प्रभुत्व फिर से स्थापित करने की आशा रखेंगे और यह आशा पुनर्स्थापना के प्रयास में बदल जायगी और अपनी पहली गम्भीर पराजय के बाद हारा हुआ शोषक वर्ग जिन्हें कभी भी अपनी हार की आशा नहीं थी, जो कभी इसे सम्भव नहीं मानते थे, जो कभी इसे विचार में भी लाने के लिए तैयार नहीं थे दस गुनी शक्ति के साथ सौ गुने क्रोधपूर्ण आवेश की घृणा को लेकर अपने खोये हुए दुर्ग पर फिर से अधिकार करने के लिए अपने उन परिवारों की ओर से युद्ध में कूद पड़ेंगे जो इतना मधुर और सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे थे किन्तु जिन्हें अब 'साधारण लोग' बर्बादी और मुसीबतों (तथा ''मामूली कामों'') का शिकार बना रहे हैं।

''और इन परिस्थितियों में, एक खतरनाक और तेज लड़ाई के युग में जब इतिहास ने यह सवाल सामने लाकर खड़ा कर दिया है, कि युगों से चली आनेवाली शोषकों की सुविधाएँ रहेंगी या नहीं रहेंगी, ऐसे समय में बहुमत और अल्पतम की बात करना, विशुद्ध जनवाद के सम्बन्ध में बात करना, अधिनायक तंत्र के अनावश्यक होने के सम्बन्ध में और शोषकों तथा शोषितों की समानता के सम्बन्ध में बातें करना इसके लिए कितनी असीम मूर्खता और प्रचण्ड अज्ञान की आवश्यकता है।''

समाजवादी राजसत्ता और उसके काम

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, रूस के सर्वहारा वर्ग ने अक्टूबर 1917 में वहाँ के भूस्वामियों और पूँजीपतियों की हुकूमत का सफाया कर दिया और पुरानी भूस्वामी-पूँजीवादी राजसत्ता को जड़-बुनियाद से खोदकर उनकी जगह पर नये प्रकार की राजसत्ता कायम की। लेनिन और स्तलिन की शिक्षाओं के आधार पर रूस का सर्वहारा वर्ग जानता था कि पूँजीवादी राजसत्ता और उसके कलपुर्जों को चकनाचूर किये बगैर और उसके स्थान पर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र कायम किये बगैर वह कभी भी समाजवादी समाज की स्थापना नहीं कर सकेगा।

यह नयी राजसत्ता (सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र या समाजवादी राजसत्ता) पहले की राजसत्ताओं से बुनियादी तौर पर भिन्न है। पहले की राजसत्ताएँ मेहनतकशों, शोषितों को दबाने के लिए शोषक वर्ग के हाथ का हथियार थी। समाजवादी राजसत्ता

मेहनतकशों को शोषण और दमन से छुटकारा दिलाने के लिए सर्वहारा वर्ग के हाथ का हथियार है।

पुरानी राजसत्ताएँ मेहनतकश जनता के विशाल बहुमत पर मुट्ठी-भर जालिमों की तानाशाही का हथियार थी। समाजवादी राजसत्ता जनता के विशाल बहुमत की तानाशाही है, मुट्ठी-भर जालिमों के खिलाफ।

पुरानी राजसत्ता का काम रहा है शोषण और दमन की व्यवस्था को मजबूत बनाना और उसे कायम रखना। समाजवादी राजसत्ता का काम है मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की सम्भावनाओं को हमेशा के लिए समाप्त करना और ऐसे समाज का निर्माण करना जिसमें वर्ग विभाजन नहीं होगा और इसलिए किसी प्रकार की जोर-जबरदस्ती भी नहीं होगी।

पूँजीवादी शोषण व्यवस्था को पूरी तरह से समाप्त करने के लिए और एक नये समाजवादी समाज की स्थापना करने के लिए और वर्ग शत्रुओं से समाजवादी राजसत्ता की रक्षा करने के लिए सर्वहारा वर्ग को समाजवादी राजसत्ता की आवश्यकता होती है। सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में समाजवादी राजसत्ता कायम किये बगैर समाजवाद की विजय असम्भव है।

हमने देखा कि समाजवादी राजसत्ता मजदूर वर्ग के हाथ का वह हथियार है जिसके द्वारा वह

1. अपने वर्ग शत्रुओं को दबाकर रखता है।
2. विदेशी पूँजीपतियों के हमलों से अपने देश की रक्षा करता है।
3. समाज से शोषक वर्ग का खात्मा कर एक ऐसा समाज कायम करता है। जिसमें न कोई लुटेरा होता है और न कोई लुटनेवाला।
4. समाजवादी देश का औद्योगिक विकास करता है, देशवासियों की समाजवादी-सांस्कृतिक शिक्षा की व्यवस्था करता है, समाजवादी सम्पत्ति की देखभाल और उसकी रक्षा करता है।
5. समाजवादी समाज कायमकर कम्युनिस्ट समाज की स्थापना की तरफ कदम बढ़ाता है और इस प्रकार की एक नयी शिक्षा, नयी संस्कृति और सभ्यता की बुनियादी डालता है।

समाजवादी राजसत्ता क्रान्ति को सफल बनाकर अपने उद्‌देश्य तक पहुँचने के लिए सर्वहारा वर्ग के हाथ का मुख्य हथियार है।

सर्वहारा वर्ग इस हथियार का इस्तेमाल अपनी वर्ग पार्टी अर्थात कम्युनिस्ट पार्टी के जरिये करता है।

चौथा सबक

जनता की लोकशाही

1945 से पहले तक हम जनवाद की दो ही शक्लों से परिचित थे, पूँजीवादी जनवाद और समाजवादी जनवाद।

पिछली लड़ाई के बाद पूर्वी यूरोप के कई देशों में बल्गेरिया, चेकोस्लोवेकिया, पोलैण्ड, अल्बेनिया, रूमानिया और हंगरी फासिस्टों की हार के बाद वहाँ की जनता ने फासिस्टों और उनको मदद देनेवाले पूँजीपतियों तथा जमीदारों से लड़कर एक नये प्रकार का जनवाद कायम किए जिसे जनता की लोकशाही कहते हैं। सोवियत संघ की लाल सेना की सहायता से हिटलरी दरिन्दों से अपनी आजादी हासिल करने के साथ-साथ वहाँ की जनता ने पुराने किस्म की जनवादी व्यवस्था अर्थात पूँजीवादी जनवाद को प्रणाम कर लिया। पुराने जनवाद की जगह जो ''नया जनवाद'' या ''जनता की लोकशाही'' उन्होंने कायम की उसमें किसानों और मजदूरों को राजसत्ता के कामों में अधिक से अधिक खींचा जाता है, अर्थात सरकारी ओहदों पर किसानों और मजदूर के बेटों को अधिक से अधिक जगह दी जाती है। पूँजीवादी समाज में जनवाद चन्द पूँजीपतियों की बपौती था, जनता की लोकशाही में वह सही माने में जनता की चीज बन गया।

इन देशों में राजसत्ता का संगठन भी नये सिरे से किया गया है। इन देशों की राजसत्ता का वर्गीय उद्‌देश्य है मजदूर वर्ग के नेतृत्व में सर्वहारा एकाधिपत्य को सफल बनाना।

नये जनवादी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों ने दूसरे महायुद्ध के बाद की अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति और उनकी कमजोरियों को समझा, उन्होंने अपने-अपने देशों की विशेष अन्दरूनी हालतों को भी परखा और फिर इस समझ और परख के आधार पर उन देशों में सर्वहारा एकाधिपत्य का नया रास्ता तय किया। इस नये रास्ते का ही नाम हैं जनता की लोकशाही। जनता का जनवाद और नया जनवाद जनता की लोकशाही के ही दूसरे नाम हैं। अपने समय की ऐतिहासिक परिस्थितियों में कॉ. स्तालिन की शिक्षाओं के आधार हैं। इस प्रकार जनता की लोकशाही की राजसत्ता सर्वहारा वर्ग एकाधिपत्यों का दूसरा स्वरूप है।

पूर्वी यूरोप में समाजवादी क्रान्ति के फलस्वरूप नयी जनवादी राजसत्ताओं का जन्म हुआ और जन्म से ही उन्होंने सर्वहारा एकाधिपत्य के हथियार की तरह काम किया। श्रेणी रहित समाजवादी समाज की स्थापना इन राजसत्ताओं का उद्‌देश्य है।

इन राजसत्ताओं का मुख्य काम है देश में शोषक वर्गों का दमन और बाहरी

आक्रमणों से देश की रक्षा करना। इस माने में यह राजसत्ताएँ सोवियत राजसत्ता के पहले दौर में हैं।

अक्टूबर क्रान्ति और उससे पैदा होनेवाली राजसत्ता और पूर्वी यूरोप के देशों की समाजवादी क्रान्ति से पैदा होनेवाली नयी जनवादी राजसत्ताएँ दोनों का वर्ग स्वरूप और उनके एतिहासिक काम एक होते हुए भी उनके बाहरी स्वरूप में अन्तर है। नयी जनवादी राजसत्ताएँ सर्वहारा वर्ग का एकाधिपत्य होते हुए भी सोवियत राजसत्ताएँ नहीं हैं। इसका कारण है दोनों के जन्म के समय की अलग-अलग परिस्थितियाँ।

सोवियत राजसत्ता ने जन्म के दूसरे ही दिन से सर्वहारा वर्ग के एकाधिपत्य की शक्ल ले ली थी। लेकिन नयी जनवादी राजसत्ताओं ने वह काम धीरे-धीरे सम्भाला। वहाँ पूँजीपतियों, जमींदारों और उनके राजनीतिक संगठनों को एक ही चोट में सीधे तौर पर समाप्त नहीं किया गया।

दूसरी लड़ाई के बाद की राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों में इन देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों को अपने ढुलमुल साथियों को ही नहीं बल्कि कहीं-कहीं ठेट पूँजीवादी पार्टियों को भी ताकत में हिस्सा देना पड़ा था। रूमानिया और बल्गेरिया में शुरू में राजा तक गद्दी से नहीं उतारा गया था। लड़ाई के दिनों में इन देशों में फासिस्टी गुलामी के खिलाफ राष्ट्रीय आजादी का जो संघर्ष चला उसमें मजदूर वर्ग तथा उसके हिरावल दस्ते (कम्युनिस्ट पार्टी) के नेतृत्व में तमाम किसान जनता, मध्यम वर्ग तथा पूँजीपति वर्ग के एक हिस्से ने भी भाग लिया था, वह जनता के शत्रुओं के खिलाफ सभी सामन्तवाद विरोधी, साम्राज्यवाद विरोधी, फासिस्ट विरोधी ताकतों का मिला-जुला अभियान था। इसलिए फासिस्टों पर जीत हासिल करने के बाद उन देशों में जो सरकार बनीं वे जन विरोधी, राष्ट्र विरोधी ताकतों के खिलाफ सर्वहारा के नेतृत्व में जनता का लोकतन्त्र थीं, जनता के लिए। दूसरे शब्दों में उन देशों, उस समय की विशेष परिस्थितियों के कारण, विरोधी वर्गों की राजनीतिक ताकत को हर क्षेत्र में पूरी तरह शुरू में ही तोड़ा नहीं गया। यही कारण है कि शुरू में वहाँ रूस के मुकाबिले सामाजिक परिवर्तन धीमा रहा।

सोवियत राजसत्ता और जनवादी राजसत्ताओं के बाहरी स्वरूप में उस समय जो अन्तर दिखायी पड़ता था उसके पीछें यही ऊपर कही गयी ऐतिहासिक परिस्थितियाँ थी। इस बाहरी अन्तर के बावजूद दोनों समाजवादी राजसत्ताएँ हैं जिनका वर्ग चरित्र एक है, दोनों सर्वहारा वर्ग के एकाधिपत्य का काम करती हैं।

चीन में नया जनवाद

क्रान्ति के बाद चीन में जो राजसत्ता स्थापित हुई थी वह पूर्वी योरूप के नये जनवादी देशों की राजसत्ता से भिन्न थी। पूर्वी योरूप की राजसत्ताएँ समाजवादी

राजसत्ताएँ थीं जो सर्वहारा वर्ग के एकाधिपत्य का काम करती थीं। लेकिन चीन की मजदूरों, किसानों, मध्यवर्गियों, राष्ट्रीय पूँजीपतियों और देशभक्त जनवादी तत्त्वों के संयुक्त जनवादी मोर्चे की राजसत्ता थी और इस माने में वह जनता का लोकशाही एकाधिपत्य था।

कुछ लोग सवाल करते हैं कि क्रान्ति के बाद चीन में सर्वहारा वर्ग का एकाधिपत्य या समाजवादी राजसत्ता न कायम करके जनता की लोककशाही का रास्ता क्यों अपनाया गया? इस सवाल का जवाब चीन की उस समय की सामाजिक परिस्थितियों में मिलता है।

क्रान्ति से पहले चीन अर्ध-औपनिवेशक और अर्ध-सामन्ती देश था। वहाँ की जनता का अधिकांश हिस्सा सामन्तवादी शोषण का शिकार था और देश की सारी अर्थनीति साम्राज्यवादियों के शिकंजे में थी। उस हालत में चीन के सर्वहारा वर्ग का पहला काम था चीनी जनता को सामन्ती शोषण से छुटकारा दिलाना और देश को साम्राज्यवादी ताकतों की गुलामी से आजाद करना। गुलाम देश का सर्वहारा, देश को आजाद करके ही समाजवाद कायम करने की बात कर सकता है। अगर घर अपना होते हुए भी अपने कब्जे में न हो तो उसकी सफाई या फिर से बनवाने की बात करने से पहले मुख्य काम उस पर अधिकार जमाने का होता है। यही हाल देश का है। उपनिवेशक देश में पहला सवाल होता है साम्राज्यवादियों के चंगुल से देश को छुड़ाकर उस पर अधिकार जमाने का, देश को आजाद करने का। चीन की उस सामन्तवाद विरोधी साम्राज्यवाद विरोधी लड़ाई में, उस स्वाधीनता संग्राम में कुछ एक प्रतिक्रियावादी जन-विरोधी तत्त्वों को छोड़कर सबका फायदा था। किसान जमीन चाहते थे, वे सामन्ती शोषण से परेशान थे, बेरोजगारी और महँगाई से मध्यम वर्ग की कमर टूटी जा रही थी। राष्ट्रीय पूँजीपति अर्थात मँझोले और छोटे पूँजीपति भी साम्राज्यवादियों और बड़े दलाल पूँजीपतियों के मुकाबले सर नहीं उठा पा रहे थे। इसलिए इस सभी वर्गों ने क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग का साथ दिया। यह सही है कि राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग ने शुरू से आखिर तक एक जैसा साथ नहीं दिया वह कभी ढुलमुलाया, कभी तटस्थ रहा और कभी विरोधी कैम्प में गया। लेकिन वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी की सही नीति के कारण इस वर्ग ने भी देश की आजादी की लड़ाई के अन्त में जनता के पक्ष का समर्थन किया। इस प्रकार चीनी क्रान्ति की जीत सिर्फ सर्वहारा वर्ग की ही जीत नहीं थी। वह चीनी जनता के विशाल संयुक्त जनवादी मोर्चे की जीत थी।

मजदूर वर्ग के नेतृत्व में संयुक्त जनवादी मोर्चे की जीत के बाद चीन में इस जनवादी मोर्चे की राजसत्ता ही स्थापित हो सकती थी, सिर्फ सर्वहार की नहीं। इस प्रकार चीन की राजसत्ता चीनी जनता के संयुक्त जनवादी मोर्चे की राजसत्ता थी, वह जनता का जनवादी एकाधिपत्य था।

जनता की लोकशाही का यह रास्ता सिर्फ चीन ही नहीं बल्कि सभी औपनिवेशिक तथा अर्थ-औपनिवेशक देशों का रास्ता है।

चीनी जनता की लोकशाही का उस समय फौरी काम चीन में समाजवाद कायम करना नहीं था। उस समय उसका काम था खेतिहार सुधार, मजदूरों-किसानों की दोस्ती को मजबूत करना, देश की जनता को सक्रिय राजनीति में खींचना, देश का आर्थिक पुनर्निमाण और औद्योगिकीकरण की सम्पत्ति की बुनियाद को मजबूत करना, मेहनत करनेवालों के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाना और सांस्कृतिक क्रान्ति को पूरा करना। इसके अलावा चीन की राजसत्ता का बहुत बड़ा काम था साम्राज्यवादियों के आक्रमण से देश की रक्षा करना। इन कामों को पूरा किये बगैर वहाँ समाजवाद कायम करने का सवाल नहीं उठता था। इन कामों को पूरा करके ही चीन की राजसत्ता समाजवाद की ओर बढ़ने का रास्ता साफ कर सकती थी। औपनिवेशिक देश में समाजवाद की तरफ आगे बढ़ने के लिए जनता की लोकशाही पहली शर्त है।

पाँचवा सबक

कम्युनिज्म और राजसत्ता

दुनिया में कम्युनिज्म कायम हो जाने के माने होंगे वर्गों और श्रेणियों का अन्त हो जाना। उस समय आज की बहुत-सी संस्थाएँ जिनका आधार वर्ग समाज है, बेकार होकर समाप्त हो जायेंगी, जैसे फौज, पुलिस, अदालतें जेलें आदि।

कम्युनिस्ट समाज में इस्तेमाल की हर एक चीज काफी तादाद में सबके लिए आसानी से मिल सकेगी, किसी चीज का अभाव नहीं होगा। मालिक, मजदूर जमींदार, किसान, अमीर, गरीब भी नहीं होंगे। जब सबको सब चीजें आसानी से मिल जायेंगी और किसी को किसी चीज का अभाव नहीं होगा तो उसके लिए चोरी, डकैती, गिरहकटी, जालसाजी, फरेब आदि भी नहीं होगा। इसी प्रकार जब मालिक मजदूर, जमींदार-किसान आदि नहीं होंगे तो एक आदमी दूसरे का शोषण भी नहीं करेगा। अर्थात जब श्रेणियाँ नहीं होंगी तो श्रेणी संघर्ष भी नहीं होगा। जब श्रेणी संघर्ष नहीं होगा तो एक वर्ग द्वारा दूसरे को दबाकर रखने का सवाल भी नहीं रहेगा और यह सब नहीं होगा तो पुलिस, अदालतें, जेलें आदि भी नहीं रह जायेंगी।

कम्युनिस्ट समाज अन्तरराष्ट्रीय समाज होगा जिनमें एक देश दूसरे देश को लूटने और उसे गुलाम बनाने की न सोचकर एक-दूसरे की उन्नति की बात सोचेंगे। इसलिए उनमें भाईचारे और शान्ति का सम्बन्ध होगा। जब लड़ाइयाँ नहीं होंगी तो फौज-फाटा की भी जरूरत नहीं रहेगी।

हमने देखा कि कम्युनिस्ट समाज में फौज, पुलिस, अदालतें, जेल, दमनकारी कानून आदि नहीं होंगे। दूसरे शब्दों में कम्युनिस्ट समाज में राजसत्ता जो इन्हीं सब संस्थाओं के योग का दूसरा नाम है, की आवश्वकता नहीं रहेगी और वह संस्था बेकाम होकर समाप्त हो जायेगी, उसका क्षय हो जायेगा।

यहाँ पर इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि जहाँ पूँजीवादी लेखकों और राजनीतिज्ञों की निगाह में राजसत्ता एक आदर्शवस्तु है जिसकी जरूरत समाज में हमेशा रहेगी, वहाँ मार्क्सवादी उसे केवल अस्थाई संस्था मानते हैं। उनकी निगाह में राजसत्ता सर्वहारा के शत्रुओं को दबाकर रखने का साधन है। सर्वहारा राजसत्ता पर इसलिए अधिकार नहीं जमाता कि सबको सब कुछ करने की आजादी दे दी जाय। वह इसका एलान करने में संकोच नहीं करता कि राजसत्ता के सहारे वह अपने वर्ग शत्रुओं को ठीक उसी तरह दबाकर रखेगा जिस तरह अभी तक पूँजीपति राजसत्ता के सहारे श्रमिक वर्ग को दबाकर रखते आये हैं और जिस दिन समाज के सभी लोग समान रूप से स्वतंत्रता का उपभोग कर सकेंगे उस दिन श्रेणियों का अन्त हो जायेगा और साथ ही राजसत्ता भी बेकार की संस्था रह जाने के कारण निष्प्राण होकर समाप्त हो जायेगी। लेकिन यह तभी हो सकता है जब सारी दुनिया में कम्युनिज्म की विजय हो जाय।

अब सवाल यह उठता है कि क्या कम्युनिस्ट समाज में राजसत्ता के लिए किसी दौर में कोई जगह है या नहीं।

सोवियत रूस में सामाजवाद की विजय के बाद, अर्थात वहाँ पर समाजवादी समाज कायम हो जाने के बाद सन् 1939 में कम्युनिस्ट निर्माण की तरफ कदम उठाने का सवाल आया तो कुछ लोगों ने सवाल किया कि क्या कम्युनिस्ट समाज में भी राजसत्ता की जरूरत रहेगी? इस सवाल का आधार मार्क्स-ऐंगिल्स का वह आम सिद्धान्त था कि समाज से वर्गों का अन्त हो जाने के बाद एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग को दबाकर रखने से हथियार अर्थात राजसत्ता का भी अन्त हो जायेगा।

सोवियत संघ की अठारहवीं पार्टी कांग्रेस में इस सवाल का जवाब देते हुए कॉ. स्तालिन ने बताया कि सोवियत रूस में कम्युनिज्म कायम हो जाने के बाद भी जब तक वह विरोधी पूँजीवादी और साम्राज्यवादी देशों से घिरा रहता है तब तक समाजवादी देश में कम्युनिस्ट समाज की रक्षा के लिए हमें समाजवादी राजसत्ता की जरूरत रहेगी। देश के अन्दर वर्गों और वर्ग शत्रुओं के खत्म हो जाने के बाद विदेशी वर्ग शत्रुओं के आक्रमण का खतरा जब तक बना रहेगा तब तक उसका मुकाबला करने के लिए राजसत्ता को क़ायम रखना पड़ेगा। हाँ समय और परिस्थितियों के हिसाब से इस राजसत्ता का स्वरूप और इसके काम बदलते रहेंगे।

जब दुनिया में सभी या अधिकांश देशों में समाजवाद कायम हो जायेगा, तब सोवियत रूस का पूँजीवादी घेरा टूटकर समाजवादी घेरे में बदल जायेगा और जब

विदेशी आक्रमण का खतरा जाता रहेगा तो राजसत्ता की जरूरत जाती रहेगी। तब यह बेकाम संस्था बनकर समाप्त हो जायगी अर्थात उसका क्षय हो जायगा।

पूँजीवादी घेरे के रहते पूँजीवादी हमले की सम्भावना भी बनी रहती है और जब तक यह सम्भावना बाकी है तब तक राजसत्ता को खत्म करने की बात करने का अर्थ हुआ जान-बूझकर विरोधियों को फिर से समाज पर अपनी शोषण व्यवस्था लादने का अवसर देना।

राजसत्ता पर ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसे तौलकर देखने से पता चलता है कि

1. पूँजीवादी समाज में राजसत्ता की आवश्यकता पूँजीपतियों को होती है।
2. संक्रमण काल और समाजवादी समाज में राजसत्ता का उपयोग सर्वहारा के हितों की रक्षा करने में होता है।
3. अधिकतर देशों में पूँजीवादी समाज कायम रहते एक या दो देशों में कम्युनिस्ट समाज कायम हो जाने पर राजसत्ता की आवश्यकता पूँजीवादी देशों के हमलों से कम्युनिस्ट समाज की रक्षा करने के लिए होती है।
4. सभी या अधिकांश देशों में कम्युनिस्ट समाज स्थापित हो जाने पर श्रेणियों का अन्त हो जाने के कारण राजसत्ता की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

और

1. पूँजीवादी राजसत्ता पूँजीवादियों अर्थात अल्पमत की तानाशाही है जिसके द्वारा वे लोग मजदूर वर्ग तथा दूसरे मेहनतकशों को दबाते हैं और उनका शोषण करते हैं।
2. समाजवादी राजसत्ता सर्वहारा अर्थात बहुमत का एकाधिपत्य है जिसका उपयोग सर्वहारा अपने विरोधियों को दबाकर रखने, श्रेणियों और शोषण का अन्त करने तथा समाजवादी समाज की स्थापना करनें के लिए करता है।
3. कम्युनिस्ट समाज की पहली अवस्था में देश के अन्दर किसी को दबाने का सवाल नहीं रह जाता है लेकिन बाहरी हमलों का डर रहता है, इसलिए इन हमलों से देश की सेवा करने के लिए राजसत्ता की भी आवश्यकता रहती है।
4. कम्युनिज्म की अन्तरराष्ट्रीय विजय के बाद कम्युनिस्ट समाज में किसी को दबाकर रखने का सवाल ही नहीं रह जाता और इसीलिए राजसत्ता की भी जरूरत नहीं रह जाती है उसका क्षय हो जाता है।

□□□

मार्क्सवाद-लेनिनवाद को पढ़ने-पढ़ाने के दो तरीके हैं। एक तरीका है, उसे कोरे सिद्धान्त की तरह किताबी तौर पर पढ़ना और दूसरा तरीका है, उसे जनता की रोजमर्रा की जिन्दगी से मिलाकर रचानात्मक तौर पर पढ़ना। किताबी तौर पर पढ़ने-पढ़ाने से मतलब है जैसे हमारे देश के स्कूलों में किताबें पढ़ाई जाती हैं या यों कहिए कि रटाई जाती हैं।

इस तरह से पढ़ना-पढ़ाना मजदूरों और किसानों को बड़ा रूखा लगता है। इससे उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता। पढ़ने-पढ़ाने का यह तरीका गलत है।

रचनात्मक तरीका यह है कि मार्क्सवाद की हर एक बात को अपने चारों तरफ की जिन्दगी से मिसालें लेकर उन पर लागू करते चलना। इसके बगैर मार्क्सवाद निर्जीव-सा लगेगा। मजदूर को उसके शहर और कारखानों की मिसालों के साथ समझाने से उसे मार्क्सवाद एक जिन्दा सिद्धान्त लगेगा। तभी उसे मार्क्सवाद में अपनी जिन्दगी के सब सवालों का हल नजर आयेगा। इसे कहते हैं सिद्धान्त को काम और जीवन की कसौटी पर उतारते हुए पढ़ना-पढ़ाना। इसी तरह किसानों को समझाने के लिए उनकी जिन्दगी से मिसालें लेनी चाहिए।

-शिव वर्मा

गार्गी प्रकाशन

मूल्य : दस रुपये